द्वितीय अध्याय

डॉ. लाल के मिथक नाटकों की आवधारणा

द्वितीय अध्याय

डॉ. लाल के मिथक नाटकों की अवधारणा

डॉ. लाल : जीवनवृत्त :

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिन्दी साहित्य की जानी-मानी हस्ती थी। महत्वपूर्ण एवं उपयुक्त। हिन्दी साहित्य के मौलिक नाटककारों में डॉ. लाल का नाम शीर्षस्थ है।

" डॉ. लाल का जन्म 4 मार्च 1927 को जिला बस्ती (उत्तर प्रदेश) के गांव जलालपूर में हुआ। पिता का नाम श्री शिक्सेवकलाल और माता का नाम मूंगा है। "[1] वह एक साधारण कायस्थ परिवार था। डॉ. लाल का जीवन ग्रामीण परिवेश में बीता। स्वच्छंद जीवन बीताते बीताते ही उन्हें किसान, धरतीमाता, मध्यमवर्गीय जनजीवन, ग्रामीण जीवन इस सब का आभास होने लगा। अपने आयु के चौदह वर्ष उन्होंने ग्रामीण परिवेश मे बीताये थे। ये चौदह वर्ष डॉ. लाल अपने पूरे जीवन में भूला न सके।

उनकी सेहत्त एकदम तंदुरूस्त थी। हट्टे-कट्टे ठाठ देहाती का व्यक्तित्व था उनका। गांव के उच्च कुल के लडकों के साथ कुस्ती लडकर अपना धाक जमा लिया था। पिताजी विरोध करते, पर एक तरह से उन्हें भी संतोष था। उनका चेहरा चौडा तथा सांवला परंतु प्रसन्न था।

उनकी शादी उनके उम्र के 16 वे वर्ष में हुई। देहाती होने के कारण उनकी शादी इत्नी जल्दी हो गयी थी। उनके पत्नी का नाम आरती देवी था। उनकी पुत्री सरोजनी नामक थी। उन्होंने पारिवारिक झंझट में न अटककर अपना साहित्यिक जीवन ही अपनाया। इसका मतलब यह नहों कि, उन्होंने परिवार को छोड़ दिया। जब कभी काम पडता फौरन अपने गांव चले जाते। मीठी वाणी तथा दूसरों के प्रति अपार प्यार ही उन्हें सबसे निराला करता था। उनका प्रसन्न व्यक्तित्व अहंकार विरहित था।

प्रायमरी की शिक्षा गांव में ली, तथा हाईस्कूल की भी। इंटरमिडिएट तक पहुंचकर अगली पढ़ाई के लिए पिताजी की मर्जी के खिलाप इलाहाबाद भाग गये। पिताजी चाहते थे बेटा नौकरी करें, पर बेटे की इच्छा पढ़ाई की थी। इलाहाबाद में अनेक संकटों का सामना करके 1948 में स्नातक परीक्षा पास हो गये, फिर 1950 में हिन्दी में एम्.ए. किया और " हिन्दी कहानी का शिल्पविधि " विषयक शोध प्रबंध पर डी.फिल्. की उपाधी प्राप्त की। ये सारी शिक्षा प्राप्त करते समय ना जाने उन्हें कितने संकटों का सामना करना पड़ा होगा ?

1953 से 1955 तक एस्.एम्.कॉलेज, चंदौसी में हिन्दी के आध्यापक थे। 1955 में इलाहाबाद में चौधरी महादेव प्रसाद कॉलेज में हिन्दी विभागाध्यक्ष नियुक्त हो गये। इसी दौरान इलाहाबाद में इन्होने नाट्य केंद्र की स्थापना की। 1965 में दिल्ली विश्वविद्यालय में नियुक्त हो गये। 1972 में उसे भी छोड़कर नेशनल बुक ट्रस्ट में सम्पादक बन गये। परइसी साल वह नौकरी भी छोड़कर स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य में संलग्न हो गये।

डॉ. लाल व्यवहार कुशल तथा विनम्र थे। उन्हे गंवार, अख्खड तथा विवादास्पद व्यक्तित्व के भी कहा जा सकता है। बचपन से लेकर उम्र की आखिर तक वे हठी तथा बेफिक्र रहे। नौकरी छोड़कर उन्हों ने लेखन कार्य की शुरूआत की पर लेखनकार्य के दौरान नौकरी जैसा जीवनकाल बिताया। उन्होंने अपने लेखकीय जीवन में अपनी रचनाओं में कलात्मक और व्यावसायिक संतुलन कायम रखने की कोशिश की। वे स्वभाव से व्यवसायी नहीं थे, पर उनका लेखन व्यवसायी था। वे यथार्थ प्रिय व्यक्ति थे, केवल सामान्य नाटककार नहीं थे। वे बुद्धिवादी कलाकार भी थे। उनके बारे में कोई कुछ कहता और कोई कुछ, पर वे अपने तरीके से अपनी जिंदगी बिताते थे।

लेखन साहित्य में उन्होंने न केवल नाटक लिखे, नाटक के साथ साथ उपन्यास, कथासंग्रह, एकांकी संग्रह, सामयिक साहित्य आदि कई प्रकार के साहित्य का लेखन कार्य किया। उनके नाटक रंगमंच पर खेले गए हैं। तथा उन्होंने बहुत नाटकों का खुद निर्देशन भी किया था। उनके साहित्य में तत्कालिन समाज का चित्रण, व्यक्तिगत समस्या, दम्पती जीवन की समस्या आदि का चित्रण हुआ है। " डॉ. लाल के लिये कला अपने आप में कोई चीज़ नहीं है, जो कला जीवन से संबद्ध न हो, उसके लिये डॉ. लाल के मन में कोई जगह नहीं है। कला तो अभिव्यक्ति का सौंदर्य है, चातुर्य है, उसकी सरसता है, और सहजता भी, लेकिन मुख्य बात तो यह है कि, लेखक कहना क्या चाहता

है, उसकी खोज क्या है ? "[2] यथार्थता को उजागर करना ही डॉ. लाल अपना उद्दिष्ट मानते हैं। सामान्य व्यक्ति दिशाहीन होनेपर, मजबुर हो जाता है, तभी उसे पथप्रदर्शन करके सही दिशा में ले जाना डॉ. लाल जैसे कलाकार का कार्य हो जाता है।

डॉ. लाल का कृतित्व :

डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार है। क्या नाटक, क्या एकांकी, क्या उपन्यास, क्या कहानी, साहित्य के प्रमुख विधाओं को उन्होंने रेखांकित किया तथापि नाटककार, निर्देशक, अभिनेता के रूप में वे विशेष ख्यातिप्राप्त रहे हैं।

नाटक : अँधा कुआँ, मादा कॅक्टस, सुंदररस, सूखा सरोवर, नाटक तोता मैना, तीन आँखोवाली मछली, रक्तकमल, रातरानी, दर्पन, सूर्यमुख, कलंकी, मिस्टर अभिमन्यु, करप-र्यू, अब्दुला दिवाना, व्यक्तिगत, नरसिंह कथा, एक सत्य हरिश्चंद्र, यक्षप्रश्न, उत्तरयुद्ध, सब रंग मोह भंग, गंगामाटी तथा सगुनपंछी।

एकांकी संग्रह : ताजमहल के आंसू, पर्वत के पिछे, नाटक बहुरंगी, नाटक बहुरूपी, मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी तथा दूसरा दरवाजा।

उपन्यास : देवीना श्रृंगार, हरा समंदर गोपीचंदर, प्रेम एक अपवित्र नदी, बसंत की प्रतिक्षा, अपना अपना राक्षस, बडकेभैय्या, बया का घोंसला और सॉंप, रूपाजीवा, काले फूल का पौंधा, बड़ी चंपा छोटी चंपा, मनवृंदावन आदि।

कथा संग्रह : सूने आंगन रस बरसे, डाकू आये थे, एक बूँद जल, एक और कहानी।

अनुसंधान : हिन्दी कहानियों का शिल्पविधि का विकास, पारसी हिन्दी रंगमंच और नाटक, रंगमंच और नाटक की भूमिका। आधुनिक हिन्दी कहानी।

सामयिक साहित्य : आधी रात से सुबह तक, अंधःकार में एक प्रकाश तथा जयप्रकाश।

वैचारिक ग्रंथ : निर्मूल वृक्ष का फल, भारतीय राजनीति का चरित्र।

उपर्युक्त साहित्य के आधारपर यह कहा जा सकता है कि, डॉ. लाल हिन्दी साहित्य के उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण कलाकार थे। उन्हें खोकर हिन्दी साहित्य का अनमोल हिरा खोया है ऐसा लगता है।

उनका देहावसान 5 नवंबर 1987 को हुआ। यद्यपि वे आज हमारे बीच नही रहे हैं फिर भी अपनी साहित्य संपदा से और सक्रिय रंगमंचीय साधना से अमर हुए हैं। एक सजग, समृद्ध

नाट्यशिल्पि के रूप में उनका कार्य अवश्य ही सराहनीय है।

डॉ. लाल के नाटकों का प्रेरणास्त्रोत :

डॉ. लाल ने अपने जीवन काल में कई प्रकार का लेखन किया है। पर इसके पिछे एक कहानी है, जो उनकी अपनी बेटी सरोजनीलाल ने बताती है जैसे - मैं सोचती हूँ कि इनका लेखन स्वतः ही नहीं फूटा और ना ही किसी प्रेरणा से वरन् लेखन तो इन्होंने मजबूरी में किया। विश्वविद्यालय की फीस के लिये इन्हें कई टयूशन करने पडे तथा कुछ पैसे कभी घर भी भेजने पड़ते थे। इलाहाबाद में जब तक ये रहें इनके संघर्षों की कोई सीमा नहीं थी। इसी से उपजा है मेरे बाबूजी का रचनाकार, लेखक, कथाकार, नाटककार।

" हिन्दी लेने से ये डॉ. रामकुमार वर्मा के सम्पर्क में आए तथा अंग्रेजी से बच्चन जी के सम्पर्क में। इन्हें दाखिला तो मिला पर सबसे बड़ी समस्या थी फीस की। पहले महीने इनको 120 रूपये देने थे। सो इन्होंने अपनी जिंदगी का पहला उपन्यास ' रक्तदान ' लिखा। "[3]

इतना होनेपर भी यह कहना पड़ेगा कि, आकाशवाणी नाटक विभाग के प्रस्तोता इलाहाबाद नाट्य संस्था के संयोजक, अभिनेता एवं निर्देशक आदि के सम्पर्क ने उन्हें नाटक के बहुत करीब लाया तथा उन्हें नाटक लिखने की प्रेरणा मिली। वैसे उन्हें रंगमंच से काफी लगाव था इसलिये डॉ. लाल मूलतः नाटककार के रूप में स्वीकार किये जा सकते हैं। उनका लेखन कार्य लगातार जारी रहता था। उनके जीवनकाल के अंततक जारी रहा।

छुटपन में देखे और खेले गये रामलीला का गहरा असर उनकी रचनात्मक प्रक्रिया में दिखाई देता है। जब वे घर छोड़कर इलाहाबाद आये, तो उनके अध्यापक डॉ. रामकुमार वर्मा नाटक तथा रंगमंच से संलग्न थे। डॉ. लाल उनके निकटवर्ती होने से अभिनय तथा निर्देशन के माध्यम से वे भी नाटक के करीब हो गये। उनपर डॉ. रामकुमार के लेखन का गहरा प्रभाव था। उनका पहला एकांकी संग्रह ' ताजमहल के आँसू ' पूर्ण रूप से डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुकरणपरकता पर लिखा गया।

यदि ये संग्रह अनुकरण परक था, फिर भी डॉ. लाल के लेखकीय प्रतिभा को डॉ. वर्मा ने पहचान किया और उन्हें प्रोत्साहित करते रहे। शहरी बनवट उनके मन को रास नहीं आ रही थी। गांव से खुली हवा, विशाल रंगमंच तथा कुदरती तौर-तरी के में जीनेवाले डॉ. लाल अपने इर्द गिर्द

उलझनों में उलझे रहे।

उन्होंने अपने उलझनों को सुलझाने के लिये नाट्यकेंद्र ढूँढ निकाले तो उन्हें समाधान नहीं दे सके। फिर उन्होंने ' संवाद ' नामक नाट्यसंस्था की स्थापना की। और बाद में उन्होंने महत्वपूर्ण नाटक लिखे। उन्हें आखिरतक रंगमंच का अभाव खटकता रहा। परंतु उन्हें अपने उद्देश्य का सही रास्ता मिल गया था। उनके मनको सुकुन जरूर आ गया था। " भाई मुझे तो अपना स्वधर्म मिल गया। मध्यवर्ग के आदमी को अपना स्वधर्म ढूँढ पाने में इतना समय लगता है। देखों सोलह वर्ष आध्यापक रहने के बाद, मुझे पता चला कि, मैं केवल लिख सकता हूँ। वही केवल वही मेरा स्वधर्म है। जब स्वधर्म मिल जाय तो उसे पकड़ लेना और उसी के साथ मरना-जीना यही तो पुरूषार्थ है। "[4]

वे अपने लेखन कार्य संलग्न होकर संतुष्ट थे। थकान नाम उनके रजिस्टर में नहीं था। उन्हें कोई कहता कि विश्राम करो तो वे कहते कि वे मजूदर की तरह अठारह घंटे काम करेंगे। इसप्रकार जीवन के अंतकाल तक उनका लेखन कार्य चलता रहा। उन्होंने मिथक के शक्ति को, महत्व को पहचान लिया था और इसीलिये उन्होंने अपने नाटक में मिथक का प्रयोग किया है। पुराने मिथक-प्रतीक को आधुनिकता के चोखट में रखकर उन्होंने उसका अंकन अपने लेखन में किया।

पुरा प्रसंगों को पुनर्व्याख्या में ढालकर मिथक को डॉ. लाल ने सामयिक स्थिती, यथार्थ और युगयथार्थ से जोड़ा है।

डॉ. लाल के नाटकों का सामान्य परिचय :

अ) डॉ. लाल के अमिथक नाटक।

ब) डॉ. लाल के मिथक नाटक।

अ) डॉ. लाल के अमिथक नाटक :

हमने पहले ही देखा की डॉ. लाल मूलतः नाटककार ही है। डॉ. रामकुमार वर्मा के प्रभाव से डॉ. लाल भी नाटक में दिलचस्पी लेने लगे। इतना ही नहीं उन्होंने केवल नाट्य लेखन किया, परंतु वे अभिनय तथा निर्देशन के क्षेत्र में भी उतने ही खरे उतरे थे।

डॉ. लाल के कुछ नाटक ग्रामीण जीवनपर आधारित है तो कुछ नाटक सामाजिक समस्यापर आधारित है। कुछ नाटक राजनीति पर आधारित है तो कुछ पौराणिक डॉ. लाल के अमिथकीय नाटकों का परिचय हम अध्ययन की सुविधा के लिये संस्करण के अनुसार करेंगे। वैसे कुछ

विद्वानों ने उनके नाटकों के अन्वेषण काल, विकास काल तथा उपलब्धि काल में विभाजित किया है, पर हम संस्करणानुसार देखते हैं। -

1) अंधा कुआँ (1955) :

यह उनका पहला पूर्णांगी नाटक था। जिसमें नाटक के सभी तत्वों को लेकर चर्चा नहीं की जा सकती। इसलिये यह नाटक के सभी तत्वों के कसौटीपर शायद खरा न उतरा हो फिर भी उनके इसी नाटक को पहला नाटक कहा जा सकता है। नाटक की कथावस्तू ग्रामीण जीवनपर आधारित है। यह नाटक इतिवृत्तात्मक होने से नाटक की घटनाओं को लगातार घटित होना ही नाटककार के शैली की श्रेष्ठता साबित करता है। जीवन की उलथ-पुलथ किन घटनाओं से तथा किस परिवेश से हो सकती है उसका अनुभव नाटक पढ़कर या देखकर हो सकता है। असल में यह एक त्रासदी है। पती-पत्नी के बीच का समझौता ही जीवन सुकर बनाता है। यह बात इसमें जाहीर हो सकती है। हिंसा का प्रतिशोध किस हद तक खतरनाक हो सकता है इसका जीता जागता उदाहरण नाटक में उभरा है।

2) सुंदर रस (1959) :

यह नाटक डॉ. लाल ने प्रहसन के रूप में लिखा है। कथावस्तु के उद्देश्य का ही नामकरण नाटक को किया है। जीवन सुख-दु:ख के फेरे में अटका है। सुख की परिक्रमा पूरी होने से पहले ही दु:ख आता है जिस प्रकार रात के बाद दिन तथा दिन के बाद रात आती है। उसी प्रकार इसमें पती-पत्नी एक दूसरे को झूठ से दूर ले जाने की कोशिश करते हैं, और कामयाब भी होते हैं। झूठ की पैठ कितनी बुरी होती है उसका उदाहरण इसमें पाया जाता है। ' सुंदर रस ' कोई बाहरी चीज नहीं बल्कि अंतर जगत् को जताने वाली अंतर जगत् को सुंदर करनेवाली ही चीज है, यह बात ही नाटक में बतायी गयी है। पती-पत्नी के बीच का तनाव जब शिथिल हो जाता है तो पूरा परिवेश ही बदल जाता है। जीवन जीने की इच्छा प्रबल हो उठती है।

3) मादा कॅक्टस (1959) :

यह नाटक निर्माण के साथ, मंचस्थ भी किया गया। यह भी एक त्रासदी के रूप में दर्शकों के सामने आया है। जीवन समाप्त किस प्रकार किया जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर नायक को कला में नहीं, जीवन में ही मिलता है। जीवन पलायनवादी नहीं हो सकता। जीवन वही लोग जीते हैं जो दुस्तर संकटों से हारनेवाले नहीं होते। जीवन किसी के लिए रूकता नहीं यह एक अविरत

धारा है। नाटक का नायक जीवन तथा कला में, कला को महत्व देता है जब कि उसकी प्रेमिका जीवन को महत्व देती है। कला जीवन से आती है। अगर जीवन ही नहीं रहा तो कला का क्या उपयोग ? इस प्रकार ' मादा कॅक्टस ' इतिहास, कल्पना, भावना, दर्शन, तथा यथार्थ का मिश्रण बनकर उभरा है। यह नाटक भावना प्रधान नाटक है।

4) सूखा सरोवर (1960) :

यह डॉ. लाल का एक काव्य नाटक है। काव्य तथा नाटक की अनुभूतियाँ समान धरातलपर होती है। संस्कृत साहित्य की परम्परा में नाटककार को कवि की कोटि में रखा गया है। वैसे नाटक भी एक काव्यानुभूति होने के कारण इसकी कविता का स्त्रोत अनुभूति के धरातलपर उभरता है। इस काव्य नाटक में संवाद तथा चरित्र के आधारपर ही जोर दिया गया है। चरित्रों की अभिनय मुद्रा नाटक का कथ्य अभिभूत कराती है। उनका अभिनय घटनाओं को घटित हुआ दिखाई देता है। संवाद के माध्यम से ही घटना घटित होती है। हिन्दी साहित्य में काव्य नाटक बहुत ही कम लिखे गये हैं। फिर भी ' सूखा सरोवर ' अपना स्थान बनाये रखता है। इस काव्य नाटक के कथावस्तू का कथ्य किसी लोक गाथा से जुड़ा हुआ मालूम पड़ता है। लोक गाथा से जुड़ी काल्पनिक तथा भावनिक कथा एक प्रतीक के रूप में उभर आई है। सरोवर सूखने के कारण कई लोग अन्य अन्य प्रकार से जुड़ा हुआ बताते हैं। भावना तथा सत्य के धरातल पर आधारित यह कथ्य बहुत ही प्रभावी है।

5) दर्पन (1961) :

यह नाटक प्रेम और विवाह की समस्यापर लिखा गया है। दर्पन प्रत्येक व्यक्ति को ' स्व ' से साक्षात्कार कराने वाला नाटक है। यह एक मनोवैज्ञानिक नाटक है। नाटक की नायिका दो रूपों में प्रस्तुत की है - दर्पन तथा पूर्वा। दोनों की जिन्दगी अलग अलग है। वास्तव में बचपन में स्वीकार किया गया दर्पन का भिक्षुणी का जीवन उसे युवावस्था में रास नहीं आता। इसलिए वह अपना नाम बदलकर उस जीवन में चली जाती है, जिस का उसे आकर्षण है। उस जीवन के उपभोग के बाद उसे पता चलता है कि क्या सचमुच उसे अपने पुराने (बचपन के) जीवन से चिढ़ है। तो वह यह स्वीकार करती है कि उसे भिक्षुणी के जीवन में ही आनंद तथा सफलता है और अंत में वह भिक्षुणी ही बन जाती है।.

6) रात-रानी (1962) :

यह एक अभिनयात्मक नाटक है। इसमें दम्पति जीवन की समस्या है। ब्याही हुई स्त्री

पहले प्रेम से नहीं जीना चाहती। भारतीय नारी का आदर्श सामने रखकर वह अपने पूर्वाश्रित प्रेम को तिलांजली देती है। उसका पती उसके साथ किस प्रकार का बर्ताव करता है या उसकी कदर करता है या नहीं उसका कोई संबंध उसके मनसे-शरीर से नहीं है। व्यक्ति का सुख कहाँ है यह बात जयदेव के ध्यान में बहुत देर बाद में आती है। सच तो जयदेव को सारे सुख अनुकूल है, फिर भी वह दुःखी है। सुन्दर पत्नी लखनऊ जैसे शहर में घर प्रेस नौकर कुछ भी कमी नहीं है पर वह दुःखी है। उसकी पत्नी उसे वास्तविक जीवन का साक्षात्कार कराती है। जयदेव बहुत ही अहंकारी है। उसे वास्तविकता की पहचान कराके उसकी पत्नी आदर्श स्थापित करती है। अभिनय संपन्नता इस नाटक की खास विशेषता है। हर प्रदर्शन एक नया व्यक्तित्व स्थापन करता है।

7) रक्त कमल (1962) :

यह नाटक भारत के तत्कालिन प्रवृत्ति तथा गुलामी प्रवृत्ति को उजागर करता है। आजादी का नारा लगानेवाले आजादी मिलने पर भी किस तरह दिशाहीन, उद्देश्यहिन हो गये इसका वर्णन रक्तकमल में पाया जाता है। भाई का विरोध करते समय कमल को क्या, क्या सहना पड़ा यह बाते इस नाटक में रूपायित हुई है। नयी पीढ़ी को सत्य दर्शन कराने के लिये वह अगस्त्य बनने को तैय्यार है। दिशाहीन लोगों को राह दिखाने के लिए अपने सगे भाई से भी विरोध करता है। राष्ट्रीय नवजागरण चाहनेवाला युवक अपनी पर्वा नहीं करता। अनपढ़ जनता के मन में आजादी की भावना पैदा करना आजादी केवल परकीय सत्ता से नहीं अपने ही बिरादरी वालों से गरीबों को अमीरों से आजादी यह नयी बात नाटक में समझा दी गयी है।

8) करफ्यू (1972) :

यह नाटक डॉ. लाल का एक रूपक के रूप में ही है। परंपरागत पती-पत्नी की जिन्दगी में किस प्रकार बदलाव होता है तथा विपरीत भी किस प्रकार स्विकार किया जाता है। इसका चित्रण ' कर्फ्यु ' में अच्छी तरह से किया है। डॉ. लाल ने नाटक के भीतर नाटक खेला है। संजय तथा कविता एक दूसरे के लिए अनजान है, कविता शादीशुदा औरत है, फिर भी भावना में डुबकर नाटक के नाटक में अभिनय करके अपने आपको खो देती है। कुछ काल के लिए अपना वर्तमान भूलकर तत्कालिन परिस्थिती में खोकर अपने आपको पराये पुरूष के - संजय के हवाले करती है। आत्मसमर्पण करती है। कविता का पती गौतम भी मनिषा नामक युवतीपर मोहित होकर बलात्कार

करनेपर तुला है। ये सब वारदाते ' कर्फ्यु ' में हो जाती है। शहरमें कर्फ्यु लगा है और कविता गौतम की पत्नी - संजय एक नाटककार के घर फँस जाती है। तो इधर गौतम के घर एक युवती - मनिषा फँसती है। इस प्रकार चार दृष्य खड़े करके नाटककार डॉ. लाल ने एक प्रभावी चिंतन दर्शन दर्शाया है। बदले हुए प्रसंग में भी व्यक्ति को किस प्रकार बर्ताव करना चाहिए। भावना का बोझ मनपर नहीं होना चाहिए नहीं तो समाधान प्राप्त नहीं किया जा सकता। अर्थपूर्ण जीवन बनाने के लिए या अपने सलीके से जीवन जीने के लिए कुछ कुर्बानी अवश्य करनी चाहिए या करनी पड़ती है।

9) अब्दुल्ला दीवाना (1973) :

इस नाटक में देश काल तथा कार्य को लेकर व्यापक अनुभूती दी है। उपरी स्तर पर नाटक अर्थहीन उद्देश्यहीन लगता है पर अंत: समस्या समझने पर उसका यथार्थ रूप सामने आता है। नाटककार ने जिस पात्र का चित्रण किया है वह हर समाज के जीवन के अंत:स्थल में बैठा पाया जाता है। यह रचना शैली एक्स्ट्रर्ड है। बाह्यस्तर बुन्यिाद पर आंतरिक घटनाक्रम सुरचित दिखाई देता है। भारत का प्रजातंत्र कितना बिखरा हुआ, क्रमहीन तथा शृंखलाविहित है इसका चित्रण डॉ. लाल ने उचित किया है भारतीयों पर व्यंग्य कराते हुए उनका तीखापन वर्णित है। तत्कालिन उच्य वर्गपर टीका करके अपना कर्तव्य पालन किया है। एक पथभ्रष्ट युवक-कामी और व्यसनी, एक युवती - उसे थ्रील तथा रोमांस प्रिय है। और एक अवसारवादी उच्य वर्ग का पुरूष है जो पशुवत आचार रखता है। नये जीवन में पुराने मुल्य जताने की कोशिश की गयी है। पर पुराने मूल्यों की भी हत्या का प्रयास किया गया है। अब्दुल्ला एक अमूर्त भावना का प्रतीक है जो किसी को भी उजागर रूप में नहीं चाहिये। गैरबर्ताव तो करना चाहते हैं पर नये ढंग से अलग नाम से तथा गुमनाम रहकर समय आनेपर बिल्कुल पलट जाते हैं। और नामोनिशान तक नहीं छोड़ते नयी संवेदना जमानेवाला यहाँ इस परिस्थिती में मूर्ख ठहराया जाता है।

10) गुरू (1975) :

यह डॉ. लाल का एक आदर्श नाटक रहा हें। ' स्व ' से उठकर परान्मुख हो जाना ही गुरू का उद्देश्य है। वही परान् मुखता अपने को निहारती है। अपने को भोगना - अपनी ही अभिव्यक्ति कराना ही व्यक्ति का श्रेष्ठ कार्य है। जबतक व्यक्ति खुद को पहचान नहीं लेती तब तक वह कोई ज्ञान ग्रहण नहीं कर सकती। खुद की अनुभूती कराके अपने आप को देखना ही भोग है।

वास्तव में गुरू अपने शिष्यों को ज्ञानार्जन कराता है पर जब व्यक्ति अपने भीतर झाँकता है तो बाहरी लोग या उसके शिष्य ही उसके असली गुरू होते हैं। तपस्या से व्यक्ति को मुक्ति मिल जाती है पर तपस्या के लिए मन वश में होना जरूरी है और जब व्यक्ति का मन संस्कारित होगा तभी वह तपस्या में सफल हो पायेगा। व्यक्ति समाज में रहकर दूसरों के गुनदोषों की चर्चा करता है पर वह कभी भी आत्मपरिक्षण नहीं करता। नाटक का प्रत्येक चरित्र नाटक का कथ्य प्रत्युत करता है। आचार्य चाणक्य सभी को प्रभावित करते हैं भोग के लिये - दर्शन के लिये।

11) व्यक्तिगत (1975) :

यह नाटक डॉ. लाल का एक शृंखला की तरह है, जो विगत जीवन से वर्तमान जीवन जोड़ने का प्रयास करता है। ' व्यक्तिगत ' एक आदमी की पहचान है। वह आदमी स्वार्थी, रिश्वतखोर, तथा खुद को महत्वपूर्ण समझने वाला व्यक्ति है। नाटक में केवल ' मैं ' तथा ' वह ' दो ही चरित्र है। ' मै ' स्वार्थी है, ' वह ' को बिल्कुल किंमत नहीं देता। अपनी बेईमानी में रिश्वतखोरी में डूबता जाता है और अपने आप में खो जाता है। जब उसे वस्तुस्थिती का पता चलता है तो बाहर आने का असफल प्रयास करके फिर अपने आप में खो जाता है। उसे वही नाटकीय जीवन अच्छा लगता है। अपने व्यक्तिगत से अपना व्यक्तित्व हारते हैं पर जब मालूम होता है तब अपने हाथ में कुछ भी नहीं रहता। यह नाटक बुद्धिवादीयोंके लिये चुनौती के रूप उभर आया है। खुद को संवरना - माँजना तथा अच्छे रूप में समाज के सामने प्रस्तुत करना हर व्यक्ति का कर्तव्य होता है क्या हर व्यक्ति इसे पूरा कर पाती है ?

12) संस्कार ध्वज (1976) :

इस नाटक में अवरूद्ध जीवन प्रवाह को गतीमान बनाना तथा समाज का अंधविश्वास भगाना यही उद्देश्य साध्य किया है। आज़ादी के पूर्व का जनजीवन तथा आज़ादी के बाद का जनजीवन इसका चित्रण इसमें मिलता है। ज्ञान के बिना जीवन अपूर्ण है। जब तक ज्ञान की प्राप्ती नहीं होती व्यक्ति समाज में ठीक तरह से जी नहीं सकता। राजेशाही खत्म करने के लिये परंपरा को अज्ञान को तोडना पडता है। स्वाधीनता में जीने की लालसा अत्याचार के विरूद्ध आवाज उठा सकती है। समता तथा स्वतंत्रता के प्रेमी जीवन मूल्य बदल देते हैं। नये जीवन मुल्य में सुख को ढुँढते है आज़ादी जाननेवाले - पहचानने वाले। अज्ञानी व्यक्ति परंपरा रूढ़िवादिता आत्याचार तथा हुकुमशाही सबकुछ सहन करता है।

A
11695

उसे सही दिशा दिखानेवाली ठकूराईन तथा उत्तमा जैसी समर्थशाली ही चाहिये। समाज को अन्याय के विरूद्ध लड़ने के लिये प्रोत्साहित करनेवाली खुद जेल काटती है पर समाज में दलित, अज्ञानी, पिडित जन को जागृत करती है। अतीत और वर्तमान में सामंजस्य लाकर सुखकर जीवन बीतानेवाले व्यक्ति सभी को प्रकाश में लाते हैं। ग्रामीण जनता की समस्याएँ किस प्रकार हल की जा सकती है उसका उदाहरण है ' संस्कार ध्वज ' जो खुद भी जीता है और दुसरे को जीवीत रखता है।

13) चतुर्भुज राक्षस (1976) :

यह एक नाट्यानुभूति है। गाँव में घटित घटना हर समाज की घटना है। क्रांती को सही दिशा सही पथप्रदर्शक तथा सही मदत की आवश्यकता होती है। इनमें से एक भी नही सहाय हो तो क्रांती असंभव है। अज्ञान का अंधकार गहरा होता है। उससे भय पैदा होकर व्यक्ति अपने आप को नहीं बचा पाता। इसकी कथावस्तु संक्षिप्त है। सरयू नदी के घाटपर बसा एक गाँव अकांतग्रस्त हो जाता है। कुछ लोग भाग जाते हैं जिनमें नायिका का पती है। नायिका अपने पुत्र लेकर जीवित रहती है, अन्याय सहती रहती है। वह एक अछूत परिवार है जिसमें गांव वाले लोग नफरत करते हैं। मैना नायिका जवान है इसलिये सभी उसे पाना चाहते हैं पर वह शक्तिशाली होने के कारण समाज से जूझती है। उसका पुत्र सूरजा अत्याचार सह नहीं सकता और भाग जाता है। निसहाय मैना हिम्मत नहीं छोड़ती। कठघोडवा का नाच के जरिये जमीदार कौं पोल खोलती है। सूरजा वापस आकर जनमानस के मन में नवजागरण पैदा करता है। शोषण एवं अत्याचार के प्रति आवाज उठाता है। अगर अपने अधिकारों की रक्षा करनी तो संघर्ष एवं संघठन की आवश्यकता होती है। नाटककार का यही उद्देश्य नाटक में जान भर देता है। मानवता का आदर्श तथा आदर महत्वपूर्ण है। क्रांती का उत्तरदायित्व समाज के हर व्यक्तिपर है।

14) सबरंग मोहभंग (1977) :

यह नाटक भागों में विभाजीत है। प्रथम अंक के पाच दृश्य दिये गये हैं। दूसरा अंक घोर यथार्थ प्रस्तुत करता है। सबरंग का अर्थ है सभी-रूपि-रंग का नाटक। पहले अंक के पाच दृश्यों में पहला - सडक का रोमांस, दुसरा - रोमँटिक कॉमेडी, तीसरा - चौके चुल्हे का रोमांस, चौथा - ट्रेजिडी, पाँचवा - माईथोलाजिकल चिज दिखाये हैं। आधुनिक जीवन की विविधता दर्शाने के लिये नाटककार ने इस प्रकार की रचना की है। आम आदमी का चरित्रांकन पहले दृश्य में है। समाज

का तत्कालीन जीवन तथा व्यक्ति की तत्कालीन समझ इसपर नाटक का कार्यभार तथा नतीजा दिखाई देता है। अंग्रेजी शासन का प्रभाव सामन्यों के जनजीवन पर किस हदतक दिखाई दिया है कि कुछ लोगों को इसकी आवश्यकता है कि सामान्य जनजीवन को भारतीय परंपरा का दर्शन करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिती में क्या करना चाहिये इसका पथप्रदर्शक कोई नहीं। ऐसे पथप्रदर्शक की आवश्यकता है।

15) गंगामाटी (1977) :

यह नाटक ग्रामीण जीवन का कथ्य है। वैसे उन्होंने अपने बहुत सारे नाटकों में इसका चित्रण किया है। ग्रामीण जनता में नवजागरण तथा लोगों को अपने हक प्रस्थापित करने की सही दिशा बतलाना यही नाटककार का उद्देश्य होता है। गांव का पंडित शिवानंद सारे गाँव को धर्म की आड लेकर अपनी मुठ्ठी में रखता है। उसका पुत्र भी उसे इसमें सहायता करता है। पर दूसरा पुत्र इसके विरूद्ध आवाज उठाकर सारे गांववालों को जागृत करता है तथा उन्हे जीने का सही तरीका बताता है। इस कार्य में उसे जानना और अपना व्यक्तिगत सलोका बनाना सीखना चहिये। डॉ. लाल के हर नाटक का प्रतिनिधी मौजुद रहता है जो ऐन समयपर नायक की सहायता करता है। कही वह सूत्रधार है, कही अगंतुक, तो कही पुरूष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। नाटक में तीन दम्पति है जो अलग-अलग ढंग से अपना जीवन बीताते हैं। हर एक की विशेषता अलग है। कहीपर स्त्री का महत्व है तो कहीपर पुरूष का महत्व, तो कहीपर भावनात्मक, हिंसात्मक रूप भी उभरता है। एक को जीवन आदर्श - एक को परंपरा का तो एक को रूढ़ि प्रियता। अपने-अपने सलीके से जीवन बीताने के बजाय किसी के दबाव में आकर जीवन सार्थक कराते हैं।

16) सगुन पंछी (1977) :

यह नाटक पूर्वजन्म पर आधारित है। यह तोता-मैना की कहानी है। लोक गाथा के आधार पर रचा गया यह नाटक स्त्री-पुरूष के परस्पर विश्वास-अविश्वास को आधार बनाती है। राजा अंगध्वज की कहानी है - उसकी पत्नी रानी रूपमती - एक दूसरे के बिना एक पल भी नहीं रहते। गाँव के दूर एक दम्पत्ती है पंचम तथा गंगा एक दूसरे पर अथाह प्यार, अटूट प्यार टूटते नजर आता है। एक मोती से खो जाने से मोती मिलती नहीं तो रानी जिद करती है। राजा नगर छोड़कर चला जाता है तो एक वृद्ध उसे पूर्वजन्म की कहानी सुनाकर भडकाता है - राजा विश्वास करके, रानीपर नजर रखता है पर असफल। रानी की मृत्यू के बाद पछताता है और उसे आधा जीवन दान करता है।

गंगा और पंचम भी दूर रहकर एक दूसरे के लिये मिलने का बेचैन है। अविश्वास में ही विश्वास है, इसकी प्रतीती आनेपर दोनो दम्पीत अपना उर्वरित जीवन आनंद से बीताते हैं।

डॉ. लाल के और भी कुछ नाटक है जो केवल नाटक के नाम ही यहाँपर उधृत किये जा सकते है। जैसे खेल नहीं नाटक, तोता-मैना, नाटक बहुरंगी, नाटक बहुरूपी आदि। उनके नवीनतम नाटक ' रक्त की लड़ाई ' तथा ' बलराम की तीर्थयात्रा ' भी है।

डॉ. लाल के नाटकों में जनसामान्य का जनजीवन ग्रामीण परिवेश राजनीतिक तथा सामाजिक संघर्ष आदि कई विषयोंपर लेखा जोखा मिलता है।

ब) डॉ. लाल के मिथक नाटक :

डॉ. लाल हिन्दी साहित्य के परिचित एवं महत्वपूर्ण नाटककार माने जाते हैं। पुराण काल से लेकर मिथक का प्रयोग साहित्य में हो रहा है। मिथक मानव के अंतर्मन से संबंधित होते हैं यह बात हमने पहले ही देखी है। मिथक पुराने होते हुए भी उसे नये परिवेश में आबद्ध किया जाता है। मिथक की व्याख्या तो हमने देखी ही है।

" मिथक किसी जाति या देश की सामूहिक सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति है। उनमें प्राचीन काल के लोगों ने अपने युगमानस को अपने ढंग से प्रकट करने का प्रयत्न किया है। "[5]

डॉ. लाल ने अपने मिथक नाटकों द्वारा पुराने मिथक को नयी व्याख्या में परिवर्तित करके आधुनिक युग के मिथक की प्रतीमानता को निर्दिष्ट किया है। तत्कालीन समाज का चित्र पुराने काल में भी अंकित था, इसका एहसास हमें डॉ. लाल के मिथक नाटक पढ़नेपर होता है। डॉ. लाल ने अपनी नाटकोंद्वारा सामयिक सन्दर्भ एवं यथार्थदर्शन कराया है। मिथक नाटकों का जायजा करने पर यह बात स्पष्ट होती है बहुधा मिथक नाटक पुराण तथा इतिहास के आधारपर ही लिखे गये हैं। डॉ. लाल ने भी अपने मिथक नाटक पुराण, महाभारत काल, तथा उसपर आभासित नाटक पर लिखे यह बात निम्नांकित तक्ते से मालूम होगी।

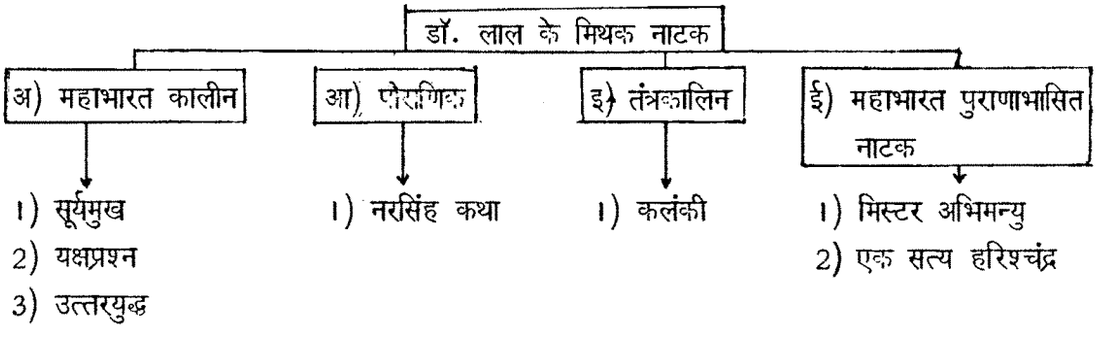

उपर्युक्त तक्से से डॉ. लाल के मिथक नाटक कुल मिलाकर सात है ऐसा दिखाई देता है। इन्होने महाभारत कालिन, पौराणिक, तंत्रकालिन, तथा महाभारत-पुराणाभासित नाटक लिखे। नहाभारत पुराणाभासित का अर्थ है इस नाटक के केवल नाम पुराण या महाभारत का आशय निर्मित करते हैं। वैसे इन नाटकों में आधुनिक परिस्थिती का सामाजिक चित्रण ही उभरा है। नाटक के नाम देखकर पाठक समझ बैठता है कि यह नाटक उसी काल्म के है, परंतु यह बात सच नही है। अब हम इन नाटकों को विस्तार के साथ देखेंगे -

अ) महाभारत कालिन मिथक नाटक :

।) सूर्यमुख (।968) :

सूर्यमुख नाटक वास्तव में महाभारत के अन्तिम कालसे चित्रित नाटक है। पुरानी वस्तु नयी चेतना में तथा नयी वस्तु पुरानी चेतना में प्रदर्शित करके डॉ. लाल ने अपना आधुनिकत्व तथा सामर्थ्य साबित कर दिखाया है। महाभारत का युद्ध तो सर्वविदित है। परंतु उसके बाद क्या वारदात हुई इसकी जानकारी आसानी से नही प्राप्त हुई है।

डॉ. लाल ने ' सूर्यमुख ' में नई समस्या का उद्घाटन किया है। उसकी समस्या अवैध प्रेम की समस्या है, भारतीय संस्कृति के खिलाफ है, जनमानस को न पचनेवाली समस्या कों समाधान है। इस नाटक का मुख्य धरातल प्रेम है, पर वह भारतवासियों को कहातक मान्य है यह विवादास्पद विषय है।

इस नाटक में श्रीकृष्ण-रूक्मिनी का पुत्र प्रद्युम्न कृष्ण की अंतिम पत्नी वेनुरती से प्रेम करता है। इस प्रेम को रूक्मिनी तथा सभी जनसामान्य प्रजा अवैध मानती है। पर प्रद्युम्न-वेनुरती को किसी की भी पर्वा नहीं है। वेनुरती का पहला प्यार, उसके पहले दर्शन से - जो प्रद्युम्न से हुआ था ही फूट निकला। वह किसी रिश्ते को नहीं मानती। केवल दोनों के अप्रतिम प्रेम को स्वीकार करती है। वह अपने प्रेम की तुलना किसी से नहीं करना चाहती।

" ' मेरे प्रेम की तुलना नहीं हो सकती ' तथा

' मेरे प्रद्युम्न और मैं हमारे प्रेम को समझना इतना आसान नहीं। ' "[6]

वेनुरती प्रद्युम्न से इतना चाहती है कि, वह उसके लिये जान देने को तैय्यार है। द्वारिका का जीवन धोखे में है, उसे नये किरण की आवश्यकता है यह बात वेनुरती नागकुण्ड की

पहाडियों में छिपे प्रद्युम्न को वहा जाकर बताती है। और उसे द्वरिका में वापस लाती है। और अपने ही भाईयों से प्रद्युम्न को सामना करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिती में भी वेनुरती प्रद्युम्न का साथ नहीं छोडती उसे हर समय प्रोत्साहित करती रहती है।

सूर्यमुख आत्मसाक्षात्कार परक नाटक है। प्रद्युम्न तथा वेनुरती का प्यार उन्हें आत्मसाक्षात्कार की ओर उन्मुख करता है। यह प्यार रूढि-परंपरा के चौखट को तोड़कर फूट निकला है। व्यक्तित्व, इतिहास, पुराण आदि स्थिती का ज्ञान इस नाटकद्वारा हो जाता है। पुराण तथा मिथक के तावों को अपनाकार उन्होंने एक नया दृष्टीबोध पाठक दर्शकों के सामने प्रस्तुत किया है।

इस नाटक में राज्यव्यवस्था, गृहकलह, राजगद्दी के लिये स्पर्धा, अवैध प्रेम, तिरस्कार, मानसिक द्वंद्व, आत्मसाक्षात्कार, जनमानस की समस्या, अर्जुन के व्यक्तित्व की पहचान, राज्यलिप्सा तथा अनादर आदि कई विषय लिये गये है। पुराण की वस्तु आधुनिकता को तथा यथार्थ संदर्भ को उजागर करती है। पुराण के चरित्र तत्कालिन परिस्थिती में या परिस्थिती-परिस्थिती में किस प्रकार बदल सकते हैं इसका दर्शन इस नाटकद्वारा हो गया है।

लोकगीतों के आधारपर प्रद्युम्न-वेनुरती के मन की भावनाओं का उद्घाटन किया गया है। नाटक़ के अन्य पात्रों के संवाद द्वारा भी प्रद्युम्न-वेनुरती के प्रेम का उद्घाटन किया गया है। मध्ययुग की रंग-प्रणाली मुखौटे का प्रयोग इस नाटक के लिये किया है। वेशभूषा का प्रयोग भी पुराणकाल से सन्दर्भ में ही किया गया है। समान्य पात्रों का संवाद तथा अभिनय भी रहस्योद्घाटन कर जाता है।

संस्कृति, इतिहास, रूढि, परंपरा आदि सभी शब्दों को तोड-मरोड कर नाटककार ने नया आदर्श स्थापित किया है। कृष्ण को अतीत तथा प्रद्युम्न को भविष्य कहकर नया सन्दर्भ प्रस्तुत किया है। बभ्रु, साम्ब, व्यासपुत्र आदि पात्रों को केवल आत्मपरक दृष्टीकोण से प्रस्तुत करके दुर्गपाल को तटस्थ दर्शाया है। नाटक का केंद्रबिंदू है प्रद्युम्न वह द्वारिका का सूर्यमुख है, वेनुरती का सूर्यमुख है। " अपने चरित्रों को मिथकीय संसार से उठाकर तत्कालिन परिप्रेक्ष्य में नाटककार स्वतंत्र भारत के नागरिकों को अपने अधिकारों और जनतंत्री चेतना के प्रति सचेत करके राष्ट्रीय आकांक्षा की पूर्ति करना चाहता है। "[7]

पुराने चरित्र आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का डॉ. लाल का उद्देश्य सफल हो गया है।

2) यक्षप्रश्न (1976) :

डॉ. लाल के दो लघु नाटकों का संकलन है यक्षप्रश्न और उत्तरयुद्ध। आपातकाल के ये नाटक त्रस्त जन-मानस को पुरूषार्थ का सही अर्थ बताते हैं। दोनो नाटक महाभारत के प्रसंगोपर आधारित है। द्रौपदी पर किय गये अन्याय या दर्शन आधुनिक नारी में कराके डॉ. लाल ने नारी-जागरण की आवश्यकता को महसूस किया है। यक्षप्रश्न में उत्तरहीन पांडव मिटकर भी केवल युधिष्ठिर के बलपर - जो अंहकार हीन है अपने आपको केवल धर्मपर चलनेवाला समझता है - बच जाते हैं।

समसामयिक यथार्थ के दाह को प्रकट करके डॉ. लाल ने आधुनिक युगबोध प्रस्तुत किया है। मिथकीय प्रयोग डॉ. लाल ने युगानुकूल किये हैं। पांडवों का वनवास आधुनिक काल में भी पथप्रदर्शक है। यक्षप्रश्न का उत्तरयुद्ध इसप्रकार चित्रित करके डॉ. लाल ने नया सन्दर्भ स्थापित किया है।

यक्षप्रश्न का यक्ष चारों पांडवों को - भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव को उत्तरहीन करता है। कहता है, जो समय का उत्तर नहीं देता, समय उसके लिये काल बन जाता है। यक्ष आज के समय में भी उत्तर माँगता है। पर आज का जनजीवन आज का मनुष्य इतना व्यस्त है कि उसे यक्ष की पुकार सुनाई नहीं देती। यक्ष सहदेव, नकुल, अर्जुन तथा भीम को प्रश्न पूछता है, पर कोई भी उत्तर देने को तैय्यार नहीं, उन्हें उत्तर देने की आवश्यकता भी महसूस नहीं होती वे अपने स्वयं के अहंकार में डूब गये हैं। स्व से उठकर सोचने की क्षमता उन भाईयों में नहीं है। यक्ष के प्रश्नों को सही जबाब देने के बाद यक्ष युधिष्ठिर से पूछता है कि, किसको जिन्दा करना है। तो युधिष्ठिर कहता है कि सहदेव को जिन्दा करो। यक्ष साश्चर्य होकर कारण पूछता है तो बताता है कि वह दूसरा है और दूसरा ही महत्वपूर्ण है।

सब को माने सब पांडवों को पता चलता है कि व्यक्ति प्यास जल है पर प्यास से भी बड़ा प्रश्न है। आज के आधुनिक जीवन में यथार्थ को पहचानना ही सबसे बड़ा प्रश्न है और इस प्रश्न को हल करना आसान बात नहीं है जो हरएक को त्रस्त करती रहती है।

3) उत्तरयुद्ध :

उत्तरयुद्ध की वस्तु भी महाभारत कालीन है। यह वस्तु बड़ी संक्षिप्त है। ब्राह्मणवेश के पांडव द्रौपदी के स्वयंवर में जाकर अर्जुन द्रौपदी को जीतकर लाता है। परंतु मा उसे देखे बगैर

भिक्षा समझकर पाँचों भाईयों में बाँट लो ऐसा आदेश देती है। इतना सब पांडव तथा द्रौपदी सह लेते है। परंतु दुर्योधन तथा दु:शासन उसे अपमानित करके उसके पातिव्रत्य का भंग करने का प्रयास करते हैं। यह सह न सकने के कारण द्रौपदी युद्ध छिडाने के प्रेरणासूत्र में बंध जाती है। द्रौपदी शक्ति है। पांडवधर्म तथा कौरव अधर्म। धर्म और अधर्म के बीच की लड़ाई में धर्म की जीत होना स्वाभाविक है।

यह नाटक रंगमंचपर प्रस्तुत करना बड़ा ही सरल कार्य है। केवल आधुनिकता का प्रदर्शन कराना ही नाटककार का उद्देश्य था। डॉ. लाल ने सभी पात्रों को आधुनिक वस्त्र पहनाए हैं। विदूषक इस नाटक में उद्देश्यपूर्ती या संघर्ष बढ़ाने का कार्य करता है। विदूषक कभी कभी सूत्रधार भी बन जाता है। पांडवों के कार्य की निष्क्रियता नाटक के आरंभ से लेकर अंततक दिखाई देती है। द्रौपदी की पुकार पर सभी पांडवों को एकत्रित होकर उसे बचाना चाहिये था पर पांडव स्वतंत्र रूप से आपस में ही संघर्षरत है ओर द्रौपदी को बचाने में असमर्थ है।

आधुनिक परिवेश में यही बातों को स्पष्ट कराने के उद्देश्य से डॉ. लाल ने यह कहने का प्रयास किया है, कि अगर एक सूत्र में बंधकर कार्य हो तो वह यशस्वी होता है। जनता को संघर्ष करना होगा बुद्धिजिवियों को एकसाथ मिलकर संघर्षपर या संकटों पर उपाय ढूँढने चाहिये।

इसका मंचन पांडवों के अज्ञातवास को उनके चरित्रों को ध्यान में रखकर किया है। वेशभूषा तथा केशभूषा इसी के आधारपर की है।

आ) पौराणिक नाटक :

नरसिंह कथा (1975):

पुराण काल का नाटक ' नरसिंह कथा ' बड़ा ही प्रभावपूर्ण एवं शक्तिशाली है। राजनीतिक संघर्ष को प्रस्तुत करके तत्कालिन परिवेश का यथार्थ चित्रण इस नाटक में किया गया है। नाटक के अंदर नाटक इस प्रणाली को नाटककार ने इस नाटक को अपनाया है। मिथक और यथार्थ का दर्शन जगह, जगह पर देखने को मिलता है।

तत्कालिन राजनीति का प्रतिबिंब नाटक में उभारा है। राज्यलिप्सा, एकाधिकार, निरंकुश मनोवृत्ति वाला हिरण्यकशिपु का चरित्र आधुनिक जनसामान्य में राजनीति के क्षेत्र में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। प्रल्हाद एक है, परंतु हिरण्यकशिपु अनेक।

इस नाटक की वस्तु पुराण से संबंधित है। प्रल्हाद का पिता हिरण्यकशिपु निरंकुश

शासक है, अपने हाथ में पूरे राज्य की सत्ता छीन लेता है। स्वयं को सर्वशक्तिमान तथा विधाता ही ही समझने लगता है। अपने राजनैतिक दुष्मनों को कारागृह में बन्द करके लोगों के अधिकारों पर अतिक्रमण करता है। एकाधिकार प्रस्थापित करना चाहता है। प्रल्हाद तथा अन्य सम्पन्न शासक इन प्रवृत्तियों का विरोध करना चाहते हैं। पददलित, सामान्य प्रजा, तथा अन्य अधिकारी मिलकर हिरण्यकशिपु का सामना करते हैं, जिसका नेतृत्व जागृत-अधिकार के प्रति जागरूक - प्रल्हाद करता है।

अपने अधिकारों के प्रति चौकते रहनेवाले हुताशन जैसे नृसिंह के रूप में हिरण्यकशिपु का नाश करके यह एकाधिकार समाप्त करता है। सामान्य प्रजा को चेतावनी देकर उन्हें अपने अधिकार के प्रती चेतनशील बना देते हैं। यह सब करते समय प्रल्हाद को बहुत अत्याचारों का सामना करना पडता है। मानव मूल्यों की रक्षा के प्रति संकल्पकृत प्रल्हाद किसी बड़े संकट से नही डरता। सब कुछ सहता है।

प्रल्हाद का चरित्र नाटक में केवल नायक के रूप में नहीं उभरा, वह आज के समाज का व्यक्ति ही लगता है। हिरण्यकशिपु केवल एक राजा के चरित्र में नहीं उभरा तो आज के तत्कालिन राजनीति के नेता के रूप में उभरा है। सामान्य प्रजा पुराण काल से लेकर आजतक सबकुछ सहती है। गांधीजी के अनुसार सहनशील प्रजा सबकुछ सह लेती है, उफ तक नहीं करती। अगर एखाद व्यक्ति विरोध करे तो व्यक्ति का हश्र मत पूछो।

प्रजा की कमजोरियों को पहचान कर, उनके आपसी कलह से लाभ उठाकर ही हिरण्यकशिपु जैसे अत्याचारी पूरे अधिकार पर कब्जा कर सकते हैं। प्रजा का - सामान्य जनता का सब्से पहले कार्य यह है कि आपसी कलह, जाँति धर्म, नीच ऊँच के भेद पूर्णरूप से मिटाकार हिरण्यकशिपु जैसे निरंकुश शासक को समाप्त करना चाहिये।

पुराण का हिरण्यकशिपु मृत है, पर उसके हर बूंद से नये हिरण्यकशिपु जन्मे हैं। आज के समाज में हर जगह हिरण्यकशिपु दिखाई पड़ते हैं। प्रत्येक समाान्य व्यक्ति को प्रल्हाद का रूप लेना पडेगा, तभी जाकर कुछ वर्षों के बाद यह परंपरा, राजा की एकाधिकार पद्धति का समूल नाश होगा।

डॉ. लाल के शब्दों में " यह कैसी पुराण कथा है। ये कैसे पुराण चरित्र है, जिनमें

जीवन के कितने गहन और आधुनिक संघर्षों, प्रश्नों की ओर ऐसे सार्थक संकेत है। एक ओर हिरण्यकशिपु है जो एक तरह से अवध्य है। जो इतनी शक्तियों साधनों का स्वामी है। और दूसरी ओर है प्रल्हाद - सहज, सरल, साधनहीन, प्रेममय, रागद्वेष से उपर उठा हुआ। जो युद्धरत है पर जिसमें घृणा नहीं है, प्रतिक्रिया नहीं है। जो हिरण्यकशिपु जैसे बर्बर, निरंकुश शक्ति और अधिनायक सत्य से लड रहा है मानव मूल्यों की बुनियाद स्वतंत्रता के लिये। "[8]

प्रल्हाद का चरित्र चित्रण अलग ढंग से किया है। अन्य पात्रों में डुंडा एक संतप्त नारी के रूप प्रस्तुत की है। हुताशन एक चेतनासम्पन्न चरित्र के रूप में उभरा है। हुताशन को नरसिंह के रूप में प्रस्तुत किया है। जय-विजय कथा का अनुपान करते हैं।

मिथक को युग-यथार्थ में प्रस्तुत करके मिथक को नयापन प्रदान किया है। मिथक और यथार्थ को एक-दूसरे के समान्तर रखकर नाटककार ने अपने चिंतन-दृष्टि उजागर की है। उनका यह प्रयत्न सफल हो गया है।

इ) तंत्रकालीन नाटक :

कलंकी (1969) :

यह नाटक एक प्रयोगशील मिथक रचना है जो तंत्र-यंत्रसे संबंधित है। यह नाटक किसी काल के परिवेश में नहीं बांधा जा सकता। यह नाटक भी राजनीति व्यवस्थाका प्रतिरूप है। नाटक में तंत्र का उपयोग इसलिये है कि, नाटक का प्रतिनायक अकुलक्षेम वास्तव में जीवित नहीं है, एक प्रेतावस्था में वह पूरे नगर में धाक जमाए बैठा है।

' डॉ. लाल कलंकी द्वारा यह व्यंजना देना चाहते है कि, प्रजातंत्र और मतगणना के नानपर वही शव-साधना तो आज भी की जा रही है जो ' कल्कि अवतार ' के नामपर धर्म द्वारा युग में की जाती रही। इसलिये मध्ययुगीन तंत्रसाधना और ' कलंकी अवतार ' के रूपक नाटककार को अपनी भावाभिव्यक्ति के लिए बड़ी सटीक प्रतीक हुई। '[9]

कलंकी नाटक में जिस गांव का वर्णन है उसका नाम तक उधृत नहीं किया है। ऐसे ही एक गांव का सामंत-पुरपति अकुलक्षेम नगरवासियों को धोखे में रखकर अपना वर्चस्व प्रस्थापित करता है। प्रजा का वर्णन नाटककार ने एक बेजुबान पंछी की तरह - जिसके पर भी काट दिये हों - किया है। नाटक का नायक हेरूप जनता को जगाना चाहता है, उन्हें अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर

जीना चाहिये यह जताना चाहता है। पर उसके हर प्रयत्न असफल बनते हैं। प्रजा आलसी, अंध:विश्वासी और रूढ़िप्रिय है। उन्हें बदलना इतना आसान कार्य नहीं। अकुलक्षेम हेरूप का पिता है, हेरूप अपने पिता के कारनामों को पहचानता है तथा उसके तानाशाही को मिटाना चाहता है, पर अन्त में अकुलक्षेम ही हेरूप को मिटाता है।

समाज का उपयोग अकुलक्षेम अपने स्वार्थ एकाधिकार के लिये करना चाहता है। समाज को शव बनाकर - शव साधना करता है। अपना साम्राज्य स्थापित करके समाज के लोगोंपर अंकुश लगाना चाहता है। वर्तमान परिस्थिति की पहचान सामान्य जन मानस के मन में हेरूप कराना चाहता है। पर स्वविवेक से निर्वासित तथा आत्म निर्णय से भयभीत समाज हेरूप की बाते स्वीकार नहीं करता। यह समाज पलायनवादी समाज है। सत्य से यथार्थ से दूर भागनेवाला समाज। यह समाज उज्वल भविष्य की कामना करता है, कल्कि अवतार की प्रतिक्षा करता है, परंतु उन्हें यह बात मालूम नहीं कि वर्तमान से संघर्ष करके ही उज्वल भविष्य की कामना की जा सकती है।

' कलंकी ' की कथावस्तु न पौराणिक है, न ऐतिहासिक, न महाभारतकालिन। यह एक तंत्रसाधना पर आधारित नाटक है। लोगों का विश्वास है कि कल्कि अवतार के रूप में आएगा और लोगों को शापमुक्त करेगा। यही अवतारवाद की कल्पना ही लोगों को मूर्ख, आलसी, कामचोर, अंध:विश्वासी बनाती है। नगर का शासक अपने कब्जे में पूरे गांव को लिये बैठा है। जब उसी का बेटा उसके खिलाफ हो जाता है तो उसे मृत्यूदंड की शिक्षा फर्माकर उसे समाप्त कर देता है।

लोगों के अंध:विश्वास तथा आलस्य ने ही तो अकुलक्षेम को प्रोत्साहित किया है। उसका कथन है - ' हट जाओ। मेरे और पास आने का प्रयत्न मत करना। मैं तुम सबसे अपने जन्म के लिये घृणा करता हूँ। उसी ने मुझे पशु बनाया। उसी ने मुझसे आत्महत्या करायी। वही मुझे प्रेत बनाकर फिर यहाँ ले आया। दूर हटो । तुम्हे देखकर मेरी इच्छा थूकने की होती है। मेरे मुख का स्वाद भयानक है। '[10]

अकुलक्षेम जनता को दोषी ठहराता है। आधुनिक युग में तथा तत्कालिन परिस्थिती में व्यक्ति को समाज को वर्तमान से सामना करना चाहिये, अगर वर्तमान से संघर्ष न किया तो भविष्य की कामना करना सर्वथा व्यर्थ है। आज के तत्कालिन जीवन में समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता, परिवर्तन, क्रांति आदि के केवल नारे लगाकर लोगोंपर विश्वास प्रकट करते हैं सत्ताधीश। असल में ये सत्ताधीश लोगों

को आतंकित करना चाहते हैं। लोगों को दिशाहीन, उद्देश्यहीन करके स्वार्थ देखते हैं। यथार्थ से लोगों को तोड़कर अयथार्थ की ओर ले जाते हैं।

नाटक का लक्ष्य कोरे तंत्रशासन को साकार कराके यथार्थसे पलायन कराना रहा है। रंगमंचपर संगीत तथा प्रकाश योजना द्वारा वातावरण निर्मिती बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत की है। कृषक के रूप में जनसामान्य को तथा तारा के रूप में जागरूक नारी को प्रस्तुत किया है। समाज यदि वर्तमान का सामना नहीं कर पाता तो परिस्थिती में परिवर्तन असंभव है यही नाटक का उद्देश्य है।

ई) महाभारत-पुराणाभासित नाटक :

।) मिस्टर अभिमन्यु (।97।) :

यह नाटक महाभारत कालिन नाटक नहीं है। नाटक का नाम पुराणपर - महाभारत पर आधारित है, पर नाटक की कथावस्तु आधुनिक है। आधुनिक युग का अभिमन्यु किस प्रकार के चक्रव्यूह में फंस गया है, वह संवेदनशील होते हुए भी आत्मा की गिरावट उसे समाप्त कर देती है।

नाटक की कथावस्तु राजन नामक आई.ए.एस्. अधिकारी की है। वह अपनी नौकरी से तंग आ गये है। नौकरी में बेईमानी करने के लिये उसे विवश किया जाता है। वह इस चक्रव्यूह से छूटना चाहता है पर परिवार तथा पिताजी के भय से समाज में सम्मान पाने के तथा परिवार की उन्नति के लिये वह इसी चक्रव्यूह में फंस जाता है। पत्नी-इज्जत का वास्ता देकर - समाज में जो मान-मर्यादा है उसे बचाकर रखना चाहती है। उसकी आत्मा बार बार उसे झंझोड़ती है, पर वह असहाय सा कुछ नहीं कर पाता। हार जाता है।

महाभारत का अभिमन्यु वीर गती पाकर भी आज हमारे हृदयस्थ है। महासंग्राम के समय वह महारथियों से घिरा हुआ था। चक्रव्यूह में प्रवेश का मार्ग मालूम होने से वह चक्रव्यूह में घुस जाता है, पर बाहर निकलना उसे नहीं मालूम, वह बाहर निकलना चाहता है, पर परिस्थितिवश बाहर नहीं निकल पाता। यही कथा आज के अभिमन्यु की - मिस्टर अभिमन्यु की है, वह चक्रव्यूह में फंस जाता है, बाहर निकलना भी चाहता है, पर परिस्थितीवश बाहर नहीं निकल पाता। मिस्टर अभिमन्यु जान बुझकर चक्रव्युह में नहीं फंसा है, उसे पिता-पत्नी द्वारा केजरीवाल आदि ने जानबूझ कर चक्रव्यूह में फंसाया है।

राजन की आत्मा मर चुकी हे। यह बात डॉ. लाल ने नाटक में बताई है। उसके आत्मा

का खून कर दिया जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने ' आत्मा अमर है ' बताया है पर नाटककार ने इस नाटक द्वारा यह बात गलत साबित करके दिखाई है। आज का अभिमन्यु धर्म के लिये नही लड़ता वह तो लालसा, सम्मान, परिवार का सुख आदि बातों के लिये धर्म का नाश करने में भी नही चूकेगा। अगर वह सच्चे दिलसे चाहता तो चक्रव्यूह तोड सकता, पर उसने आत्मा को मार डाला, चक्रव्यूह नही तोडा।

' महाभारत के पौराणिक चरित्र को नये संदर्भ में रखकर डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने समकालिन परिस्थितियों में आधुनिक व्यक्ति की त्रासदी और विडम्बना को उद्घाटित किया है। भारत की वर्तमान भ्रष्ट समाज-व्यवस्था एक ऐसा चक्रव्यूह है जिससे बाहर निकल पाना सरल नही। "[1]

डॉ. लाल ने केवल प्रतीक रूप में पुराण के अभिमन्यु को लिया है, पर वास्तविक पुराण का अभिमन्यु तथा आज का अभिमन्यु में कोई साम्य नही। पुराण का अभिमन्यु वीर योद्धा आदर्शवादी था। आज का अभिमन्यु सत्तालिप्सा, लालच सन्मान तथा सम्पत्ति के पिछे दिवाना है। उसकी आत्मा मर जाती है पर उसे कोई गम नही बहुत ही निर्लज है आज का अभिमन्यु जिलाधिश होकर भी बेईमानी लोगों के साथ हाथ मिलाता है। उपरी स्तरपर वह अपने आपको क्रोधिष्ट पाता है, पर वास्तव में राजन भी वही चाहता है जो केजरीवाल, उसके पिता-पत्नी, गयादत्त आदि चाहते हैं।

पुराना कथानक तो नही, पर आधुनिक युग बोध अवश्य पाया जाता है। दोनो में तुलना अवश्य की जा सकती है। पुराने अभिमन्यु को महारथियों का सामना करना पड़ता है, आज का अभिमन्यु भ्रष्ट राजनेता पूंजीपति, पिता तथा पत्नी इन सब का सामना करने में असमर्थ है। वह हार जाता है और अपने पराजय को स्वीकार करके नये सीरेसे जीने लगता है। प्रथमतः उसे लगता है कि, वह इस चक्रव्यूह से बाहर निकलना चाहता है और निकलेगा भी पर अपनी कायरता पर विजय नही पाता।

अभिमन्यु के पिछे ' मिस्टर ' लगाकर आधुनिकता का मुलामा चढ़ाया है। आधुनिक स्वार्थी बुद्धिजीवी के प्रति व्यंग्य कसकर डॉ. लाल ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीति की स्थिति उजागर की है। व्यवस्थाजन्य गंदगी किस प्रकार हरेगी यह एक ज्वलंत प्रश्न नाटककार तथा आज के व्यक्ति के सामने खड़ा हो गया है।

2) एक सत्य हरिश्चंद्र (1976) :

यह नाटक भी महाभारत कालिन या पुराण कालिन नही है। केवल नाम ही से लगता

है, नाम ही पुराण का आभास निर्माण करता है। तत्कालिन राजनीति से संबंधित अपने चिंतन का उद्घाटन डॉ. लाल ने किया है।

नाटक की वस्तु में लौका - जो नाटक का नायक है - वो हरिश्चंद्र के रूप में प्रस्तुत किया है, और गांव का मुखिया देवधर को विश्वामित्र तथा इंद्र के रूप में प्रस्तुत किया है। लौका राजनीति के सारे दांवपेच जानता है और देवधर के विरोध में डंटकर खड़ा हो जाता है। रूढ़िग्रस्त जनता, परंपराप्रिय जन-समाज को उसके अधिकार दिलाना चाहता है। जनसामान्य को जागृत करके अपना अधिकार छीन लेता है। लौका नाटक के नाटक में सत्य का अनुभव अपने जीवन में ही पाता है। वह जो जी रहा है, वही तो सत्य है। अपने साथियों को भी वह अपना अनुभव बताता है। " ' हरिश्चंद्र ' का नाटक खेलते हुए लौका और उसके साथियों को जिस जीवन-दर्शन की प्राप्ति होती है, वह वर्तमान राजनीतिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। इस नवीन दृष्टि को प्राप्त कर वे सत्ताधारी राजनीतिज्ञों की ' श्राप ' और ' भय ' की शक्ति से मुक्त होकर अपने अनुभव से जीवन जीने की बात करते हैं। वस्तुतः अपने पात्रों के माध्यम से नाटककार ने तत्कालिन राजनीतिज्ञ जनजागृति को सार्थक अभिव्यक्ति प्रदान की है। "[12] लौका की दृष्टी से सत्य जीवनमें जीया जाता है, न कि सत्य की परीक्षा ली जाती है। हरिश्चंद्र व्यक्ति विशेषतक सीमित नहीं वह तो अनुभवसिद्ध वस्तु मानी गयी है।

पुराण हरिश्चंद्र एक था पर आज के समाज में प्रत्येक व्यक्ति हरिश्चंद्र है। इन्द्र है राजनीतिज्ञ, रिश्वतखोर, बेईमान। शोषित वर्ग बढ़ गया है। शोषक वर्ग पुष्ट हो रहा है। पुराण काल में, मध्यकाल तक हरिजन तथा पिछ्डा हुआ समाज पीड़ित है, उनपर किये गये अत्याचारों का बदला लेना चाहता है लौका। वह ऐसे समाज का प्रतिनिधित्व करता है जो आधारहीन है, उनकी बातों पर आजतक ध्यान नहीं दिया गया। उनका जीवन नर्क बनकर रह गया है। अब यह सब असहनीय है।

लौका चरित्रवान है, सदियों से उत्पिड़ित है। सामान्य जनता भी उत्पीड़ित है, सामान्य जनता का लौका पर विश्वास है। सामान्य जनता लौका को ही अपना प्रतिनिधि मानती है, यही बात देवधर को - मुखिया को - खटकती है। वह लौका को नष्ट कर देना चाहता है। इसी के लिये एक सत्य हरिश्चंद्र नाटक खेलने की प्रेरणा लेता है। देवधर इंद्र बन जाता है पर जीतन जो विश्वामित्र बनता है सत्य का उद्घाटन होने पर लौका के पक्ष में जाता है। जीतन वास्तव में देवधर का आदमी है,

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

पर जब नाटक खेला जाता है तब जीतन के सामने सत्योद्घाटन होता है। वास्तविकता पहचान कर वह कुबुल करता है कि लौका का संघर्ष ही सही संघर्ष है। इंद्र के रूप में देवधर को वह कहता है कि, हरिश्चंद्र की कथा तो बरसो पुरानी है, पर आज का हरिश्चंद्र पुलिस, अफसर, पूँजीपति, दलाल, गुंडा, राजनीतिज्ञ तथा लालची लोगों कि द्वारा कुचला जा रहा है, आज का हरिश्चंद्र व्यक्ति के रूप में नहीं, समाज के रूप में है।

यह नाटक मिथक की पुनर्व्याख्या मात्र नहीं यह तो मिथक और आधुनिक युग का समीकरण है। मिथक की प्रासंगिकता, सार्थकता को अर्थवत्ता प्रदान करनेवाला यह नाटक महत्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हुआ है। आधुनिक युग, परिवेश, राजनीतिक परिस्थिती के प्रति जागरूक रहनेवालो में डॉ. लाल ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

डॉ. लाल के मिथक नाटकों की विशेषताएँ :

हमने पहले ही डॉ. लाल के मिथक नाटक किस प्रकार है यह देख लिया है। 1977 तक उन्होंने अपने मिथक तथा अमिथक नाटक लिखे। परंतु बाद में जब उन्होंने ' राम की लडाई ' तथा ' बलराम की तीर्थयात्रा ' नाटक लिखे तब उन्हें अपने पुराने मिथकीय कल्पनापर तरस सा आ गया। यह बात उन्ही के मुँह से सुनते हैं - " अबतक मैं अज्ञानवश मिथकीय और पौराणिक कथाओं पर आधुनिकता का आरोपण कर रहा था। इस दोष और सीमा को मैने उस दिन समझा जब मुझे अपने मिथकों के रहस्यों का पता चला कि वे तो स्वयं अपने नाम में नित्य नए अर्थ को दनेवाले हैं। इस तरह ' बलराम की तीर्थयात्रा ' में मैंने अपनी तरफ से आधुनिक होने, बनने, कहने का कोई लेश मात्र प्रयत्न नही किया। इसका फल यह हुआ कि, ' बलराम की तीर्थयात्रा ' में वह शक्ति आई है जो मेरे लिये शब्दातीत है। "[13]

उन्होंने अपने जीवनकाल में साहित्य सृजना कई प्रकार से की, परंतु उनका लेखन ज्यादातर नाटकों के जरिये हुआ है। मिथक और पुराण, मिथक और इतिहास, तथा मिथक और यथार्थ का संबंध पुराना है। वैसे मिथक ही पुराना है पर उसे विद्वानों ने आधुनिकता की आगोश में रखकर मिथक की नई व्याख्या प्रस्तुत की है। डॉ. लाल इन विद्वानों में से प्रमुख विद्वान साहित्यकार माने जाते हैं। उन्होंने पुराने मिथक को नई व्याख्या प्रदान करके अपने मिथक नाटकों का सृजन किया है। अब हम उनके मिथक नाटकों की विशेषता देखते हैं।

' **सूर्यमुख** ' उनका पहला मिथक नाटक है, जिसकी कथावस्तु महाभारत काल के उत्तर भाग की है। महाभारत का युद्ध समाप्त होनेपर जनता तथा राजदरबार के अन्य अधिकारी विलासिता में डूब गये, परंतु इधर द्वारिका में कुछ और ही घटित हो रहा था।

नाटक की कथावस्तु तो हमने देखी है, परंतु नाटक का नायक द्वारिका के राजसिंहासन का उत्तराधिकारी है। उसे अपने कर्तव्य पालन की जिम्मेदारी भी मालूम है, परंतु वह अचानक ऐसे विचित्र परिस्थिती में फंस जाता है कि उससे बाहर निकल ही नहीं पाता। उसे अपने सौतेली मां से प्रेम हो जता है, जिसमें डूबकर वह अपने आपपर काबू नहीं कर पाता। और अपने उद्देश्य से भटक जाता है।

उसकी प्रिया उसे बार-बार अपने कर्तव्य की याद दिलाती हैं। उसे बार-बार कहती है कि, तुम्ही उस राजगद्दी के उत्तराधिकारी हों। नगर में उठे बवंडर को ठीक करना तुम्हारा ही कर्तव्य है। प्रिया अपने प्रियतम के लिये प्राण त्यागना भी मंजूर करती है, परंतु नगरी के विरोधकों का नाश करना ही आवश्यक है, यह बात समझाती रहती है।

इस नाटक का मुख्य धरातल प्रेम है। नाटककार डॉ. लाल ने प्रद्युम्न-वेनुरती की प्रणयानुभूति से प्रणय का क्रांतीरूप ही प्रस्तुत किया है। आज का समाज क्या यह रूप स्वीकार करेगा ? यह विवादास्पद विषय है। उन्होंने यह नाटक पौराणिक होने का दावा तो नहीं कि परंतु कथावस्तु अवश्य पुराण की है, जिसमें आधुनिक समाज का या उसके एक दृष्टीकोण का रूप उभारा है।

इसका मूल कथ्य भले ही समाज न पचा सके परंतु तत्कालिन सामाजिक सन्दर्भ की दृष्टी से देखे तो, यह नाटक यथार्थ के निकटवर्ती माना जा सकता है। नाटक में केवल प्रेम की पृष्ठभूमी देखे, उनका रिस्ता न देखे तो यह नाटक अद्वितीय है। प्रेम का कोई नाम नहीं - कोई नाता नहीं। नाटक में यही बात स्पष्ट की है - " हर प्रिया मूलतः माँ होती है। " इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि, प्रिया अपना रूप हर समय बदलती रहती है। यह बात केवल दो अटूट प्यार करनेवाले ही जान सकते हैं।

साहित्यकार ने इस नाटक द्वारा मिथक प्रयोग परंपरा मुक्ति के लिये नहीं, परंपरा को खंडित करके, परंपरा को तोडना नहीं, जोडना चाहता है। समाज की बद्धमूल धारणा को आघात पहुंचाकर सत्यता की पहचान कराना चाहता है नाटककार। नाटक को मिथक का आवरण देकर पुराण

की कथावस्तु को प्रस्तुत करना मात्र नाटककार का उद्देश्य नहीं, अपितु आज के जनमानस के मन में प्यार का यथार्थ दर्शाने हेतु यहा नाटक प्रस्तुत किया है।

' **यक्षप्रश्न** ' की वस्तु महाभारत कालके, पांडव जब वनवास भोगने को गये तब की है। यह एक लघु नाटक है। नाटक का यक्ष जो प्रश्न पूछ रहा था वह आज के समय के भी प्रश्न है। यक्ष कहता है, कालान्तर से मैं ये प्रश्न पूछने का प्रयत्न करता हूँ, पर ठीक तरह के जबाब किसी से प्राप्त नहीं हुए। जबाब देना इतना आसान कार्य नहीं। ये प्रश्न हर युग के प्रश्न है। और इस प्रश्न के उत्तर जो नही दे पाता उसे समय कभी भी माफ नहीं करता। समय उस व्यक्ति के लिये समाज के लिये काल बन जाता है।

व्यक्ति को वर्तमान का सामना करना पड़ता है, वर्तमान से संघर्ष करना पडता है। वर्तमान के प्रश्न का उत्तर भविष्य में नहीं है, वर्तमान में ही है। व्यक्ति को हर समय सजग रहकर परिस्थिति का सामना करना पडता है। व्यक्ति को यही प्रश्न चुनौती देती है, विचार करने की। स्व से उठकर दूसरे का विचार करने की। दूसरा ही महत्वपूर्ण है। यह बात नाटक में केवल युधिष्ठिर ही जानता है। परंतु जनमानस में समाज के सभी युधिष्ठिर नहीं होते इसलिये नाटककार को यह संदेश जनसामान्यतक पहुंचाना हो कि यदि युधिष्ठिर न बन पाये तो बनने की कोशिश जरूर करो।

युधिष्ठिर एक जगह कहता है, यक्ष के प्रश्न पर -

" यक्ष : समाधान क्या है ?

युधिष्ठिर : समय को उत्तर देना।

यक्ष : उत्तर क्या है ?

युधिष्ठिर : काल-प्रश्न से जूझना। "[14]

काल-प्रश्न बहुत ही गहन तथा विचार करनेवाला होता है, संघर्ष, जूझना और उत्तर ढूँढना यही तो जीवन है। जीवन-जीने का मतलब ही तो संघर्ष है। अगर संघर्ष नहीं किया गया तो धीमी गती हो जायेगी और धीमीगति का जीवन कोई अर्थ नहीं रखता। आज का जीवन मशीन की तरह है, जो हर समय अगर उपयोग में नहीं लाया गया, तो उसपर जंग चढ जाऐगी और जंग चढी हुई वस्तु न कोई काम दे सकती न उपयुक्त हो सकती है। अगर जीवन को जीना है तो प्रवाहित रखना चाहिये क्योंकि जीवन एक धारा है, बहता हुआ जल है।

उत्तरयुद्ध भी एक लघुनाट्य है। यक्ष प्रश्न का उत्तर युद्ध है। युद्ध का मतलब संघर्ष। यह नाटक भी महाभारत के आधारपर लिखा गया है। पांडवों के वनवास तथा अज्ञातवास का नाटक है। यह नाटक आधुनिक काल का भी प्रतिनिधित्व करता है।

द्रौपदी शक्ति के रूप में प्रस्तुत की है। दुर्योधन तथा दु:शासन उसपर अधिकार जमाना चाहते है, पर द्रौपदी को यहबात कबुल नहीं। वह अपने पांचो पतियों को उनके खिलाप युद्ध के लिये, संघर्ष के लिये उकसाती है। पर पांचो पांडव एक विचार वाले नहीं। सब का अलग अलग विचार है।

आज के समाज में भी समाज के व्यक्ति एक सूत्र में बंधकर नहीं चलते इसलिये आपसी कलह ही ज्यादा है। उत्तरयुद्ध के द्रौपदी को दुर्योधन तथा दु:शासन खिंचकर ले जाते है, पर पांडव कुछ नहीं करते, वे हतबुद्ध से देखते रह जाते हैं। आज के जीवन में ऐसा नहीं होना चाहिये। संघर्ष का सामना सबको मिलकर करना चाहिये। यह संघर्ष एवं लडाई राजनीतिक शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ है। " द्रौपदी पुराण की चरित्र है, लेकिन उसकी चीख हमें आज भी सुनाईदेती है। द्रौपदी की चीख एक समय की चेतावनी है जिसकी उपेक्षा करने पर हम अपनी शक्ति और अधिकारों से हाथ भी धो बैठते है - और धो बैठे थे। "[15] पुराण की द्रौपदी आज के समाज के नारी का पीड़ित नारी का - प्रतिनिधित्व करती है। अगर यह नारी शक्ति के रूप में है तो नारी को बचाना याने अपनेशक्ति को बचाना अपने आप को बचाना है।

नाटक में डॉ. लाल ने चरित्रों को आधुनिक वस्त्र पहनाए है, यह केवल चरित्रों की पौराणिक तोडने के हेतू किया गया प्रयास है। पुराणकाल को आधुनिक काल से तोडना तथा पूर्वपरंपरा को आधुनिकता में जोडने का प्रयास किया है।

उत्तरयुद्ध तथा यक्षप्रश्न दोनों एक दूसरे के पूरक नाटक है। यक्षप्रश्न से निर्मित परिस्थिती का सामना करना ही उत्तरयुद्ध करना है।

' नरसिंह कथा ' डॉ. लाल का अपात् कालिन नाटक है। पुराण की वस्तु को आधुनिक परिवेश में ढालकर डॉ. लाल ने महत्वपूर्ण कडी बनाई है। राष्ट्रीय एकात्मकता को जगाना तथा निरंकुश शासक के खिलाफ लड़ना ही नाटक का उद्देश्य है। नाटक के अन्दर नाटक खेला जा रहा है। यह उनकी सब साहित्यकारों में अलग एवं पृथक शैली है। समकालिन राष्ट्रीय जनजीवन इस नाटक द्वारा दर्शाया गया है।

नाटक देखनेपर या पढ़नेपर लगता है कि यह परिस्थिती रचनाकार का स्वानुभव ही है, यह परिस्थिती उनकी भोगी हुई परिस्थिती है। इसमें आधुनिक संवेदना होनेसे यह नाटक यथार्थता के निकट है। इसमें तानाशाही प्रतिध्वनित हुई है। " अपातकाल की निरंकुशता, आतंक, हिंसा, व्यक्तिस्वातंत्र्य के हनन को नाटककार ने पौराणिक सन्दर्भों अथवा मिथकों द्वारा प्रामाणिकता प्रदान की है, क्योंकि भारतीय परिवेश में उक्त प्रवृत्तियों के प्रदर्शन के लिये हिरण्यकशिपु लोक-चेतना में अच्छी प्रकार से पहचाना हुआ मिथक है। लोक चेतना में सहज स्वीकार्य एवं ग्राह्य इस मिथक द्वारा डॉ. लाल ने परिवेषगत सजगता के साथ उसके यथार्थ को प्रभावशाली ढंग से उभारा है। "[16] जनता में फैला हुआ आतंक किस हदतक जा सकता है तथा राजनीति में भ्रष्ट अवस्था का चित्रण इसका समन्वय डॉ. लाल ने इस नाटक में किया है। ऐसे भ्रष्टाचारियों के विरोध में केवल प्रल्हाद नहीं टिक पाएगा, समाज को सजग होकर अपने उद्देश्य पर अडिग रहना चाहिये। राजनीति में जो निरंकुश प्रवृत्ति है उसका डटकर सामना करना चाहिये यही मंत्र नाटककार ने नाटक द्वारा दिया है।

ऐसी राजनीति के परिस्थिति में सचमुच नरसिंह कथावाले हुताशन की आवश्यकता जान पड़ती है। ये राजनीतिज्ञ पशु की तरह हीन प्रवृत्तिवाले है, उन्हें मिटानेवाला पशुतत्व ही चाहिये जो हुताशन में विद्यमान है। प्रल्हाद के सरल, सहज भाव की कीमत नहीं, हुताशन के नरसिंह रूप की आवश्यकता है।

' **कलंकी** ' में डॉ. लाल ने मिथक का नया रूप प्रस्तुत किया है। इसकी वस्तु न इतिहास की है, न पुराण की। यह एक तंत्र-मंत्र पर आधारित नाटक है। किसी कलंकी अवतार की प्रतिक्षा में पूरा गाव निष्क्रिय हो बैठा है, जो केवल अवधूत के शिंकजे में फंसा है। उन्हें वर्तमान की चिंता नहीं केवल भविष्य की फिक्र है। पर उन्हें इस बात का खयाल नहीं कि जो वर्तमान में कार्यरत नहीं उसका भविष्य अंध:कारमय है। अगर वर्तमान कार्यशील रहेगा तो भविष्य उज्वल रहेगा। " शासकों की बातो में आकर लोगों ने सोचना छोड दिया है। प्रश्न पूछना छोड दिया है, उनका संकटबोध समाप्त हो गया है, अपने उद्धार के लिये वे स्वयं कुछ नहीं कर रहे हैं, वे शव हो गये हैं, और शासन शवसाधना करते जा रहे हैं। " [17] मध्यकालिन राजव्यवस्था का चित्र इस नाटकद्वारा नाटककार ने प्रस्तुत किया है। मध्यकालिन ही नहीं सर्वकालिक राजनीति का चित्र का चित्र भी यही है। नाटककार के अन्य कई नाटकों में उत्तरयुद्ध, मिस्टर अभिमन्यु, नरसिंह कथा, एक सत्य हरिश्चंद्र

तथा अभिथक नाटक में भी डॉ. लाल के भ्रष्ट राजनीति पर व्यंग्य कसनेवाले नाटक में ऐसे चित्र उभारे गये हैं। यह हमने पिछे देखा ही है।

परंतु डॉ. लाल ने इस नाटक में तंत्रसाधना का उपयोग करके लोगों के अंधविश्वास तथा आलसी प्रवृत्ति पर भी व्यंग्य कसा है। तंत्रसाधना में साधक को बेज़ुबान, बुद्धि हीन ऐसे प्रवृत्तिवालों की आवश्यकता रहती है, क्योंकि उनकी साधना में कोई विघ्न न पड जाय। अगर साधन बुद्धिहीन नहीं, प्रश्नहीन नहीं, तो साधक उसपर मंत्रका उपयोग करके उसे बुद्धिहीन बना देता है।

इसे अंग्रेजी में ' हिप्नोटिझम ' तथा हिंदी में सम्माहेन कहते हैं। एक बार साधन सम्मोहित हो गया तो वह साधक के कहे गये आदेशानुसार अपना बर्ताव रखता है, उसी के बताए हुए मार्गपर चलता है। डॉ. लाल ने जनसामान्य को सम्मोहित करनेवाला शासक इस नाटक में अवधूत के रूप में उभारा है।

' **मिस्टर अभिमन्यु** ' नाटक डॉ. लाल का महाभारत पुराणाभासित नाटक है। इस नाटक के नाम से ऐसा दिखाई देता है कि यह नाटक महाभारत वाले अभिमन्यु पर आधारित है, परंतु वास्तव में यह नाटक आधुनिक अभिमन्यु, आज का भ्रष्ट अधिकारी के रूप में प्रस्तुत किया है। भ्रष्ट अधिकारी सम्मान के लालच में अपनी आत्मा को भी मारकर जीवित रह सकता है इसका उदाहरण इस नाटक में दिया गया है। " इस नाटक का बाह्य परिवेश आधुनिक है, इसमें अभिमन्यु नाम का कोई पात्र भी नही है, कहीं किसी को अभिमन्यु कहा भी नहीं गया है, फिर भी आज के मेसर्स अभिमन्युओं के चरित्र की विडंबना बडे मार्मिक रूप में व्यंजित हुई है। "[18]

राजनीति का भ्रष्ट रूप उभारकर रिश्वतखोर तथा बेईमान गयादत्त तथा केजरीवाल के रूप में उन्हें प्रस्तुत किया है। उनके बताये हुए चक्रव्यूह में राजन जैसे नेक इन्सान को फंसाकर उन्हें भी अपने जैसे बनवा देते हैं। उसकी आत्मा को ही मार डालते हैं उनके कार्यमें उनके सहायक है, खुद राजन के परिवारवाले पिता तथा पत्नी। राजन को भ्रान्ति है कि, वह इस चक्रव्यूह से बाहर निकलना चाहता है, पर असल में वह और ही फंसता जा रहा है।

अपने तरक्की को नामंजूर करके इस्तीफा देना चाहता है, पर पत्नी उसे अपने भविष्य तथा सम्मान के लिये भ्रष्ट अधिकारी बना रहने की सलाह देती है। डॉ. लाल ने पुराण के चरित्र को नये रंगमंच पर पेश किया है परंतु वह भी विकृत रूप में। दो युगों को फांसले को मिटाकर डॉ. लाल

ने नया आदर्श प्रस्थापित किया है। राजन की आत्मा आत्मन उसे बार-बार सजग रहने को कहती है, पर वह उसका बाह्यरूप गयादत्त तथा केजरीवाल उसे पूर्णरूप से संहारित कर देते हैं।

महाभारत का मिथक अतीत से उठकर वर्तमान के परिवेश में चरित्र में उभारकर डॉ. लाल ने गहरा व्यंग कसा है। पुराण का शहीद अभिमन्यु आज के अभिमन्यु के सामने घुटने टेकता है क्योंकि इसके वीरता का समीकरण ही राजने ने बदल डाला है।

' एक सत्य हरिश्चंद्र ' भी डॉ. लाल का महाभारतपुराणाभासित नाटक है। इस नाटक की शैली लोकनाथ या नौटंकी जैसी है। इसलिये नाटक में जगह-जगह पर पद्यपक्तियाँ दिखाई देती है। नाटक के भीतर नाटक शैली भी अपनाई है। ग्रामीण परिवेश में नीच जांति के साथ किया गया बर्ताव, शोषित, पीडित वर्ग का चित्र अच्छी तरह से खींचा गया है।

राजा इन्द्र के लिये हरिश्चंद्र को परीक्षा देनी पड़ी, इंद्र तो राजा बने रहे परंतु हरिश्चंद्र फिर कभी भी राजा नहीं बन सका। क्योंकि जबतक इंद्र का सिंहासन अटल है तबतक उसका स्थान कोई नहीं ले सकता। यही बात आधुनिक काल की है। आधुनिक काल का इंद्र है शासक। वह हरश्चिंद्र जैसे पीडित वर्ग को अपने हाथ में रखकर उनसे खुद की सेवा करवाना चाहता है।

विश्वामित्र भी इंद्र का बताया हुआ मोहरा है। उसी के बलपर तो इंद्र हरिश्चंद्र का राज हडप लेता है। परंतु इस नाटक में जो विश्वामित्र है जीतन उसे सत्य का ज्ञान होता है, सच्चे-झूठ का पता चलता है और वह भी सत्य के पक्ष में जा मिलता है। हरिश्चंद्र केवल लौका नहीं, सारी प्रजा है, जो सत्य की परीक्षा में भूनती जा रही है। " अब नीच अछूत और छोटे लोग कहे जानेवाले व्यक्तियों में अपने कर्तव्य और अधिकार के प्रति जागरूकरता आई है और वे समाज की वर्तमान व्यवस्था का खुलकर और पूरी दृढ़ता के साथ विरोध करने लगे हैं। उन्होंने अपने जीवन को पहचानना शुरू कर दिया है इसलिये दूसरों के दिए हुए गुरूमंत्रों को उन्होंने अपना जीवनादर्श बनाना बन्द कर दिया है। "[19]

सामान्य जनता जागृत हो गयी है, उन्हे लौका जैसा नेता मिलनेपर वे और भी निर्भय हो गये हैं। लौका को एक बात मालूम है कि सत्य वही है जो उसने या उसके बिरादरी वालों ने जीया है। अब उसकी परीक्षा देने की आवश्यकता नहीं। वह आखिर में कहता है अब कोई इंद्र नही होगा और कोई हरिश्चंद्र नहीं होगा। कोई परीक्षा नहीं लेगा और कोई परीक्षा नहीं देगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि -

1) डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न लेखक है। जिन्होंने नाटक, एकांकी, उपन्यास, कहानी, अनुसंधान, सामयिक साहित्य तथा वैचारिक ग्रंथ लिखकर हिन्दी साहित्य की अमूल्य सेवा की है।

2) डॉ. लाल का नाटकों का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है। उनके नाटको में उनकी जीवनानुभूति सर्वप्रमुख है, और इसलिये उनके नाटक मानव जीवन से अधिक जुड़े हुए है।

3) डॉ. लाल स्वयं एक सफल नाटककार, निर्देशक, अभिनेता होने से उनकी नाटक रंगमंच की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

4) डॉ. लाल वास्तव में एक कुशल प्रयोगधर्मी नाटककार है, उनके मिथक नाटक प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से अपना विशिष्ठ स्थान हिन्दी नाट्य साहित्य में रखते हैं। इतिहास और पुराण के पृष्ठभूमि पर लिखे गये उनके मिथक नाटक आधुनिक जीवन का मानो दस्तावेज ही है।

5) डॉ. लाल के मिथक नाटकों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि, उन्होंने पुराने मिथकों को आज के जीवन सन्दर्भ में देखने की - परखने की कोशिश की है, और यथार्थवाद की भाव भूमि पर अपने मिथक नाटकों की रचना की है।

अध्याय : 2

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :

1) नाटककार लक्ष्मी नारायण लाल, डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र, पृ. 10, प्र.संस्क, 1980

2) कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल - सम्पा - डॉ. रघुवंश, पृ. 33, प्र. संस्क, 1979

3) वही - पृ. 44, (सरोजनी लाल का लेख - वसंत ऋतु)

4) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - डॉ.सरजू प्रसाद मिश्र, पृ. 11, प्र.संस्क, 1980

5) कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल - सम्पा. डॉ. रघुवंश, पृ. 118, प्र.संस्क, 1979
(डॉ. सिद्धनाथ कुमार का लेख - मिथक और डॉ. लाल के नाटक)

6) सूर्यमुख - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 86, प्र.संस्क. 1989.

7) मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - रमेश गौतम, पृ. 82, प्र.संस्क. 1989

8) नरसिंह कथा - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. VI , प्र.संस्क, 1975.

9) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल का नाट्यसाहित्य - नरनारायण राय, पृ. 80, प्र.संस्क. 1979

10) कलंकी - डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 56, प्र.संस्क, 1969

11) मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - रमेश गौतम , पृ. 91, प्र.संस्क. 1989

12) वही, पृ. 101

13) वही, पृ. 106

14) यक्षप्रश्न डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, पृ. 81, प्र.संस्क, 1976,

15) मिथक और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाटक - रमेश गौतम, पृ. 104, प्र.संस्क. 1989

16) वही, पृ. 95

17) कृतिकार लक्ष्मीनारायण लाल, संम्पा. डॉ. रघुवंश, पृ. 126, प्र. संस्क. 1979
(डॉ. सिद्धनाथ कुमार का लेख - मिथक और लाल के नाटक)

18) वही, पृ. 129

19) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्यसाधना - नरनारायण राय, पृ. 128, प्र.संस्क. 1979

20) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - डॉ. सरजू प्रसाद मिश्र, पृ. 206, प्र.संस्क. 1980

21) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य साधना - नरनारायण राय, पृ. 194, प्र.संस्क. 1979.

22) नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल - सम्पा. डॉ. रघुवंश, पृ. 90, प्र.संस्क. 1979.
(डॉ. गिरीश रास्तोगी का लेख - नाटककार लाल की भूमिका)